मालवीय प्रकाश

मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान की हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष -3 | अंक - 6 | जयपुर | मई - अगस्त - 2017 | पृष्ठ संख्या - 1

निदेशक की कलम से...

डॉ. उदय कुमार आर. यारागट्टी

निदेशक- मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान जयपुर

अत्यंत हर्ष की बात है कि मुझे हिन्दी मासिक पत्रिका मालवीय प्रकाश के छठवें संस्करण के जरिये, संस्थान के विद्यार्थी शिक्षकगण एवं कर्मचारियों से एक बार पुनः जुड़ने का अवसर मिल रहा है।

इस अवसर पर मैं यह कहना चाहूँगा कि किसी भी संस्थान या संस्था के भविष्य की नींव वहाँ के वाशिंदों की सोच विचारों की दिशा पर निर्भर करती है।

विचार एक तरह से आंतरिक संवाद होता है। आम तौर पर किसी भी विषय पर विचार करते समय हम जिन भावों का चयन करते हैं, वह हमारे और हमसे जुड़े लोगों को जीवन को दिशा देते हैं। विचारों में असीम शक्ति होती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हमारा चेतन एक बार में एक ही तरह के विचार से प्रभावित होता है, सकारात्मक या नकारात्मक इनमें से जो विचार लंबे समय तक टिके रहते हैं, हम वैसे ही बन जाते हैं। अतः सदैव सकारात्मक सोच, सकारात्मक संवाद एवं सकारात्मक कार्य करते रहें।

सकारात्मकता का अर्थ चुनौतियों एवं विपरीत परिस्थितियों में भी आशावादी दृष्टिकोण बनाये रखना है ताकि वह मुश्किल परिस्थितयों से बाहर निकल सके।

सकारात्मक सोचने व करने का हमें अभ्यास करना होगा ताकि वह हमारी जीवन शैली का अभिन्न अंग बन सके। हमेशा स्वयं के साथ सकारात्मक संवाद करें, नकारात्मक विचारों को सिर्फ तटस्थता से देखें अपनाये नहीं जैसे रास्ते में पत्थर व कांटे होते हैं तो हम उनसे बचकर निकल जाते हैं। याद रखें चुनौतियों सदा अस्थाई होती है, मुश्किलों से परेशान न हों, इनका सामना करके ही सफलता मिलती है, हमारा व्यक्तित्व सवंरता है।

अंत में सबसे अहम बात कि विषम से विषम परिस्थितियों में भी मानवता का साथ नहीं छोड़े।

- जय भारत।

आचार्य (डॉ.) उदय कुमार आर. यारागट्टी

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय एक विलक्षण व्यक्तित्व

"मान का त्याग करने से सर्व के माननीय बनने का भाग्य प्राप्त होता है।"

मदन मोहन मालवीय

एक अनमोल शख्सियत

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय

हिन्दू महासभा की स्थापना तथा मालवीय जी

हिन्दू धर्म एवं हिन्दू संस्कृति के प्रति पण्डित मदन मोहन मालवीय के मन में बड़ा गौरव था। हिन्दुओं की वर्तमान दुर्दशा से उनके ह्रदय में बड़ी पीड़ा होती थी। अतः हिन्दू जाति का संगठन करने के उद्देश्य से ''हिन्दू संगठन आन्दोलन'' चलाया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ''हिन्दू सभा'' और ''अखिल भारतीय हिन्दू सभा'' के विलियन से ''अखिल भारतीय हिन्दू महासभा'' का जन्म हुआ। इस नवीन ''अखिल भारतीय हिन्दू महासभा'' का प्रथम अधिवेशन 19 और 20 अगस्त सन् 1923 को पण्डित मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ था।

मुस्लिम लीग की अतिरंजित माँगों, साम्प्रदायिक उपद्रव तथा ब्रिटिश कूटनीति ने देश में ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया कि निष्क्रिय हिन्दू महासभा पुनजीर्वित हो उठी।

सन् 1923 में मालवीय जी की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा के प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये गये और नया विधान बना। हिन्दू समाज की सर्वांगीण उन्नति ही हिन्दू महासभा का मुख्य उद्देश्य था।

शेष पृष्ठ 2 पर...

कर्म से व्यक्तित्व विकास

मानव जीवन में कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। कर्मशीलता की प्रवृत्ति ही मानव को जीवन में श्रेष्ठता दिला सकती है। हमने अपने जीवन में कुछ उद्देश्यपूर्ण कर्म सुनिश्चित कर रखे है और कुछ कर्म हमारे जीवन की वचनबद्धताओं के अन्तर्गत निहित है। यदि देखा जाए तो ये मात्र हमारे सुनिश्चित कर्म का ही हिस्सा है।

संभवत: इस बात से बहुत से लोग अनभिज्ञ होंगे कि कर्म से व्यक्तित्व विकास का क्या संबंध हो सकता है? अपने दैनिक जीवन में हम सभी अपनी कर्मशीलता से दूर नहीं है। दैनिक रूप से किये जाने वाले आवश्यक कार्यों और दायित्वों के निर्वहन में हमें कई बार कोई भी बदलाव नहीं दिखाई देता है क्योंकि इसमें कोई विशेषता भी नहीं है।

क्या हमने कभी इस बात पर विचार किया है कि हम अपने नियमित कार्यों और दायित्वों के निर्वहन में क्या अतिरिक्त योगदान दे रहें है? साधारण मनोवृत्ति वाला हर कर्मशील उतना ही कार्य करता है जो उसके लिए निर्दिष्ट है तो इससे उसके व्यक्तित्व में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। यदि कर्मशील व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास चाहता है तो उसे कुछ अतिरिक्त प्रयास अवश्य ही करना होगा।

इस कर्म के साथ दो चीजें जुड़ी हुई है।

1. कर्त्तव्य परायणता 2. मनोवृत्ति

अपने दायित्वों की पूर्ति के साथ यदि कुछ अतिरिक्त दायित्वों का निर्वहन किया जाए तो वह कर्त्तव्य परायणता में आता है यथा अपने कार्य के निश्चित समय से पूर्व पहुँचना, कार्य के अतिरिक्त अन्य अतिरिक्त दायित्वों का निर्वहन करना, लघु अवकाश कालांशों में भी कुछ करने का प्रयास इत्यादि। कर्त्तव्य परायणता के साथ कुशलता जुड़ी हुई है। यदि कर्त्तव्यपरायणता और कुशलता दोनों का सही सांमजस्य हो तो कर्तव्य परायणता व्यक्तित्व को निखार देती है। मनोवृत्ति का अर्थ हे कार्य करने की प्रवृत्ति में पूर्ण रूप से मनोयोग। अपने मनोयोग से किये कार्य सदैव सुव्यवस्थित ही रहते हैं क्योंकि सुरूचिपूर्ण कर्म में कही पाने की लालसा नहीं होती और ऐसा करने से ईमानदारी जैसी प्रतिभा का परोक्षरूप में विकास होता रहता है। शनै: शनै: मनोवृति से जीवन की विचारधारा बदलने लगती है और सकारात्मक रूप से किये गए कर्म से व्यक्ति का आत्मविश्वास स्वत: ही बढ़ जाता है जो उसके व्यक्तित्व को निखार देता है।

इन दो संकल्पों से कोई भी कर्मशील अपने कार्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान बना सकता है और सतत: रूप से ऐसे प्रयास से कभी-कभी व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व की एक अनुकरणीय आमधारणा बन जाती है।

मेरे अनुभवों में कर्त्तव्य परायणता और मनोवृत्ति एक संस्कार है। कुछ लोग अपने संस्कारों के कारण परायणता से संस्कारित होते हैं। संस्कार से समाज में एक नई विचारधारा वाले समाज का सृजन होता है। जिससे वहाँ का परिवेश, संस्था अथवा राष्ट्र का उत्थान होता है। कर्तव्यपरायणता और मनोवृत्ति विचार धारा के कर्मशील में काम करने की अद्भुतशक्ति होती है जो किसी भी चुनौती का सामना कर सकते हैं उनमें आत्मविश्वास कार्य करने की व्यवस्थित शैली और ईमानदारी सभी गुण आने लगते हैं। उनके चिन्तन में दृढ़ता होती है।

यदि हम अपने जीवन में कर्म के सिद्धांत का पालन करें तो संभवत: हमारे व्यक्तित्व के साथ हम अपने राष्ट्र के निर्माण में भी योगदान दे सकते हैं।

अंशु सक्सेना नियोजन एवं प्रशिक्षण विभाग

मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान जयपुर

सम्पादकीय...

प्रिय पाठकों,

बहुत लंबे अंतराल के बाद फिर से एक बार आप सभी से जुड़ रही हूँ इसलिये बहुत अहम बात कहना चाहूँगी वह यह कि हमें यह जानना आवश्यक है कि हमारे जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है?

जब हम जन्म लेते हैं तो हमें एक शरीर मिलता है, यानि कि हम (जो कि एक आत्मा हैं) एक शरीर के अंदर विराजमान रहते हैं। धीरे-धीरे आत्मा और शरीर दोनों विकास की ओर अग्रसर होते हैं, शरीर का विकास तो एक समय पर आकर रूक जाता है और कुछ समय तक उसी अवस्था में रह कर शरीर मृत्यु को प्राप्त करता है परन्तु आत्मा का विकास निरंतर होता रहता है। अतः वह कभी मरती नहीं है। अर्थात् जीवन आत्मा व शरीर का ही योग होती है। अतः शरीर की देखभाल करनी चाहिये और आत्मा का विकास करना चाहिये।

आत्मा के विकास के लिये 'आध्यात्म' को अपनाना होगा जो हमें यह बताता है कि हम अपनी आत्मा का ध्यान कैसे रख सकते हैं, यही गूढ़तम रहस्य है। भगवान से जुड़कर हम अपनी आत्मा को उसके विकास के लिये जरूरी सही खुराक दे सकते हैं, सही दिशा दे सकते हैं। भगवान कहते हैं कि मैं तो तुम्हारा मित्र हूँ ही बस तुम भी मेरे मित्र बन जाओ तो तुम्हारे सारे दुःख दूर हो जायेंगे, तब तुम्हारी आत्मा भी निर्मल व उज्जवल हो जायेगी।

हमारे व्यक्तित्व के दो पहलू होते हैं, भौतिक एवं आध्यात्मिक। भौतिक ज्ञान अविद्या कहलाता है जो कि IQ व EQ का योग है जबकि आध्यात्मिक ज्ञान 'विद्या' कहलाता है और यह SQ (स्पिराव्युल कोशेंट) कहलाता है। आज के युग में, किसी भी पाठ्यक्रम में, व्यक्तित्व विकास के भौतिक पहलू यानि 'अविद्या' की ओर तो पूरा ध्यान व ज्ञान दिया जाता है पर आध्यात्मिक ज्ञान पर नहीं, जिसकी वजह से हमारे व्यक्तित्व का विकास अधूरा रह जाता है।

हम भौतिक ज्ञान के विकास के लिये अनेकों पुस्तकों का अध्ययन करते हैं परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण करने के लिए कोई प्रयास नहीं करते हैं। इस विद्या की प्राप्ति के लिये सभी धर्मों के ज्ञान की आवश्यकता है ताकि हमारे व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो सके एवं हम अपने जन्म के उद्देश्य को समझ सकें।

जीवन का उद्देश्य, ईश्वर से जुड़कर जन्म-मृत्यु के चक्र से बाहर निकलना है। आज का युग तकनीक का युग नहीं बल्कि आध्यात्मिक क्रांति का युग होना चाहिये। इससे सभी विकास स्वतः ही होते जायेंगे। इस विषय को अपने प्रबुद्ध पाठकों के मनन के लिये छोड़ते हुये मैं अपनी विचारधारा को यही विराम देती हूँ।

सस्नेह,

भवदीया,

डॉ. ज्योति जोशी

सम्पादक एवं सह-आचार्य, रसायन शास्त्र विभाग, मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर

9413971604, 9549654852, 0141-2713350, jojo_jaipur@yahoo.com

malaviyaprakash.lokmat@gmail.com | jjoshi.chy@mnit.ac.in

योग भगाये रोग

पहला सुख निरोगी काया, यदि काया स्वस्थ्य है तो मन भी स्वस्थ होगा। तन और मन दोनों स्वस्थ्य हैं तो आनन्द प्राप्त होगा। इस परमानन्द को प्राप्त करने में योग की महती भूमिका है।

योग का अर्थ है अपनी चेतना को जगाना। अपने अन्दर समायी हुई आत्मिक शक्तियों से साक्षात्कार।

हमारे ऋषि मुनियों ने अष्टांग योग प्रतिपादित किया है जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि हैं। यौगिक क्रियाओं के द्वारा हमारी सोयी हुई चेतना का विकास होता है एवं इन क्रियाओं के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म स्नायुतंत्र सक्रिय हो जाता है एवं पूरी शरीर में रक्त संचरण भलीभाँति होने लगता है। इस प्रकार शरीर पूर्णतः निरोग हो जाता है।

यौगिक क्रियाओं से शरीर ऊर्जावान होने लगता है। इस प्रकार शरीर पूर्णतः निरोग हो जाता है। आकुंचन, संकुचन तथा शीथिलीकरण के द्वारा ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती है। योग के द्वारा हमारा पाचनतंत्र पूरी तरह निरोग हो जाता है।

शेष पृष्ठ 2 पर...

इस अंक में ...

विवरण	पृष्ठ संख्या
निदेशक की कलम से...	1
महामना पं. मदन मोहन मालवीय एक ...	1
सम्पादकीय	1
कर्म से व्यक्तित्व विकास	1
योग भगाये रोग	1
कशिश	2
मजबूरी	2
आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सांस्कृतिक	3
हाइकु : सजाक्षरी काव्य विद्या	3
जयपुर रंगमंच की कुछ यादें	3
कहानी दादी	3
जीवन का लक्ष्य : सुख व आनन्द की प्राप्ति	4

पृष्ठ 1 का शेष .....

योग भगाये रोग

शरीर के सभी रोगों का उद्‌गम पाचनतंत्र के गडबड़ होने से है।

योग के द्वारा पाचनतंत्र सम्बन्धी रोग, फेफड़े सम्बन्धी रोग, दमा, एलर्जी आदि से निजात पायी जा सकती है। योग न केवल हमारे स्थूल शरीर को सुडौल बनाता है बल्कि हमारे सूक्ष्म शरीर को भी चैतन्य स्वरूप बनाता हैं जिससे मनुष्य अंधकार से हट कर उस दिव्य योग को अपनाकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सकता है।

''धर्माथ काम मोक्षाणामरोग्यं मूलमुत्तमम्।''

धर्म के अनुष्ठान के लिए आजीविका हेतु अर्थोपार्जन के लिये, सन्तति उत्पन्न करने के लिए मनुष्य का स्वस्थ्य होना अति आवश्यक है। अतः रोग-ग्रस्त शरीर में सुख शान्ति कहाँ? भले ही धन धान्य यश, ऐश्वर्य, सब कुछ हो, किन्तु शरीर अस्वस्थ्य है तो इनका कोई अर्थ नहीं। अतः शरीर की अशुद्धियों को दूर करने हेतु एवं आन्तरिक सौंदर्य की प्राप्ति करने हेतु हमारे ऋषि मुनियों ने यौगिक क्रियाओं का आविष्कार किया है।

योग विद्या का विस्तृत ज्ञान हमारे प्राचीन शास्त्रों में मिलता है। यह भारत का प्राचीन ज्ञान है। यह एक देशीय नहीं बल्कि सार्वभौमिक है। यह हमारे ऋषि मुनियों ने मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रदान की है।

योग का अर्थ जोड़ना। मेल मिलाप का नाम ही योग है।

''संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मन परमात्मनोः।''

''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।'' चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है।

''समत्वं योग उच्चते''

जीवन में समता धारण करना ही योग है। ''योग कर्मसु कौशलम्।''

कार्यों को कुशलतापूर्वक करना ही योग है। जिस प्रकार धातुओं को अपनी इच्छानुसार परिवर्तित करने और साफ करने के लिये आग में डाला जाता है, उसी प्रकार योगाभ्यास भी इन इन्द्रियों को अपने वश में करने के लिए एक यंत्र है।

दहयन्ते ध्यायमानानां धातुनां हि यथा मलाः
तथेन्द्रियाणां दहयन्ते दोषाः प्राणस्थ निग्रहात्।।

जिस प्रकार सोना, चाँदी आदि धातुओं को अग्नि में तपाने से उनके दोष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

योग साधना करने वाले का आहार-विहार और उसके लौकिक कार्य भी यथेचित रूप से उचित ढंग से होने चाहिये।

''युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टसस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा''।

दुःखों का नाश करने वाला योग उस व्यक्ति का सिद्ध होता है जिसका आहार विहार, दैनिक कार्य, लौकिक कार्य एवं सोना व जागना यथोजित रूप से होता है। यहाँ पर यथोचित रूप से आहार का अर्थ है -

1. ठीक समय पर
2. ठीक मात्रा पर
3. ठीक गुणवत्ता भरा भोजन

यौगिक क्रियाओं में प्राणायाम का विशिष्ट स्थान है।

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वास योर्गतिविच्छेदः प्राणायामः

आसन की सिद्धि होने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्-।''

''किंच धारणासुच योग्यता मनसः।''

प्राणायाम से प्राणायानादि वायु, रक्त, मांसादि धातु, मन-बुद्धि आदि अन्तःकरण चतुष्टय और श्रोय, वाणी, नेत्र आदि की स्थूलता और विकार दूर हो जाते हैं एवं ज्ञान और आनंद की प्राप्ति के बाधक आवरणों का नाश हो जाता है।

श्वास ही जीवन की वृद्धि का सर्वोत्तम प्रकृर्त्ता है।

प्रणायाम करना केवल श्वास का लेना और छोड़ना मात्र नहीं है बल्कि प्राण शक्ति को लेना है।

प्राणायाम - प्राण का आयाम (नियन्त्रण अथवा ठहराव) ही प्राणायाम है।

प्राणायाम चित्त की निर्मलता, प्रसन्नता और एकाग्रता का एक साधन है। प्राण वह शक्ति है जो सभी क्रियाओं की जननी है। प्राण शक्ति के बिना कोई भी क्रिया संभव नहीं है। प्राण एक रज्जू के समान है जिसके एक छोर पर पंचभूतात्मक स्थूल शरीर है तथा दूसरे छोर पर सूक्ष्म मन है। प्राण शरीर और मन के बीच में रहकर इन दोनों को पकड़े है। जैसे ही हम रेचक, पूरक या कुभंक प्राणायाम करते है, शरीर और मन की गतिशीलता स्वयं ही थम सी जाती है। मन स्थिर करना ही तो योग का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्राणायाम अत्यन्त सहायक है।

आधुनिक युग अर्थ युग है। मनुष्य की जिन्दगी तनाव भरी बनी हुई है। खान-पान बिगड़ा हुआ है। मनुष्य सुबह से शाम तक भागमभाग वाली जिन्दगी जी रहा है। प्रत्येक काम्र के लिये उसके पास समय है, यदि नहीं है तो स्वयं के स्वास्थ्य के लिये। ऐसी परिस्थितियों में ऐसी कोई विद्या जो कम से कम समय में अपनायी जाकर स्वस्थ्य के लिये। ऐसी परिस्थितियों में ऐसी कोई विद्या जो कम से कम समय में अपनायी जाकर स्वस्थ्य रहा जा सके तो तो वह विद्या है प्राणायाम। कोई भी मनुष्य चौबीस घंटे में अपने स्वास्थ्य पर यदि आधा घंटे नियमित रूप से खर्च करता है तो वह बिलकुल स्वस्थ्य एवं निरोग जीवन जी सकता है।

प्राणायाम प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में करना सर्वश्रेष्ठ है। प्रातः सायं दोनों समय प्राणायाम करें तो सबसे अच्छा है फिर भी अपनी सुविधा के अनुसार इसे अवश्य करें। प्राणायाम करने से पूर्व पेट खाली होना चाहिए। ठोस आहार कम से कम चार घंटे पूर्व लिया गया होना चाहिये। प्राणायाम करते समय कोई जोर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये बल्कि अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार धैर्य पूर्वक करना चाहिये। प्राणायाम प्रतिस्पर्धा की वस्तु नहीं है बल्कि अपनी सीमा एवं शक्ति के अनुसार करना चाहिये। अपनी शक्ति का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये।

वैद्य भास्कर शर्मा, भिषगाचार्य
एमएनआईटी, जयपुर

व्यक्तित्व का आभूषण है विनम्रता

विनम्रता मनुष्य के व्यक्तित्व का आभूषण है। इसके माध्यम से हमारा व्यक्तित्व खूबसूरत बनता है, क्योंकि विनम्र होकर ही हम पात्रता अर्जित कर सकते हैं। विनम्र होकर हम ग्रहण करना सीखते हैं और विनम्रता के कारण ही हम दूसरों से जुड़ पाते हैं। भारतीय संस्कृति में इसी विनम्रता को व्यक्त करने के लिए प्रमाण व अभिवादन लेने की प्रथा है। हमारे जीवन में विनम्रता बनी रहे, इसलिए प्रार्थना, स्तुतियाँ आदि की जाती हैं, दूसरों की सेवा-सहायता व दान किया जाता है, इन सब से हमारे मन को अहंकार गलता है, मन धुलता है और हम अधिक विनम्र व कृतज्ञ बनते हैं।

हमारे धर्मग्रंथों का एक मूलमंत्र है - जो नम्र होकर झुकते हैं, वही ऊपर उठते हैं। विनम्रता न केवल हमारे व्यक्तित्व में निखार लाती है, बल्कि कई बार सफलता का कारण भी बनती है। विनम्रता के कारण जो सम्मान मिलता है, उसका एक अलग महत्त्व है। मन की कोमलता और व्यवहार में विनम्रता एक बड़ी शक्ति है। कोमलता सदा जीवित रहती है, जबकि कठोरता का जल्दी ही विनाश हो जाता है। तलवार कठोर से कठोर पदार्थ को काट देता है, लेकिन कई कठोर पदार्थों को काटने की ताकत उसमें नहीं होती।

महाभारत युद्ध के बाद धर्मराज युधिष्ठर भीष्म पितामाह के पास गए, वे बाणों की शय्या पर भूमि में पड़े थे। युधिष्ठर ने विनम्रतापूर्वक उनसे धर्मोपदेश देने का निवेदन किया। भीष्म पितामाह ने कहा कि नदी समुद्र तक पहुँचती है तो अपने साथ पानी के अतिरिक्त बड़े-बड़े लंबे पेड साथ ले आती है। एक दिन समुद्र ने नदी से पूछा कि तुम पेड़ों को तो अपने प्रवाह में ले आती हो, परंतु कोमल बेलों और नाजुक पौधों को क्यों नहीं लाती हो? नदी बोली कि जब-जब पानी का बहाव बढ़ता है, तब बेलें झुक जाती हैं और झुककर पानी को रास्ता दे देती हैं, इसलिए वे बच जाती हैं, जबकि पेड़ तनकर खड़े रहते हैं और इसलिए अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। भीष्म ने कहा कि युधिष्ठिर ठीक वैसे ही, जो जीवन में विनम्र रहते हैं, उनका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता।

यह भी अक्सर देखा गया हे कि कई लोग अपने विशेष कार्य में माहिर होते हैं, लेकिन विनम्रता के अभाव में घर या कार्यालय में सदैव परेशानी का शिकार होते हैं। विनम्रता कायरता नहीं है। यह व्यक्ति को शांति, सहनशीलता, शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है। मनुष्य यदि विनम्रता से जीवन जीना सीख ले तो अनेक परेशानियाँ देखते ही देखते समाप्त हो जाती है। इनके लिए किसी विशेष उपाय की आवश्यकता नहीं है, बल्कि थोड़ा-सा व्यवहार में बदलाव लाने मात्र से यह संभव हो जाता है। विनम्र व्यक्ति के समाने कठोर हृदय वाले व्यक्ति को भी झुकना ही पड़ता है। विनम्रता से हम छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखकर अपने जीवन को खुशहाल बना सकते हैं। जो विनम्र होते हैं, वे हर जगह सम्मान पाते हैं और दूसरों को जोड़ने का कार्य करते हैं।

विनम्रता के वास्तविक अर्थ को समझाने वाली एक कथा है - एक बार बाबा फरीद से मिलने के लिए एक राजा आया। वह बड़ा अहंकारी था। वह बाबा के ए उपहारस्वरूप एक नायाब तलवार लेकर आया। उसने बाबा से कहा - 'राजन् मैं शुक्रगुजार हूँ कि तुम मेरे लिए बेशकीमती तलवार लेकर आए, लेकिन यह मेरे किसी काम की नहीं। मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो सुई के साथ विनम्रता का उपहार दो। वह मेरे लिए ऐसी सौ तलवारों से भी अधिक कीमती होगा।'

राजा को बाबा से ऐसे जवाब की उम्मीद नहीं थी। वह बाबा की बात सुनकर दंग रह गया। वह बोला- 'बाबा! सुई और विनम्रता ऐसी सौ तलवारों का मुकाबला केसे कर सकती है? बोला बोले - तलवार लोगों को मारने -काटने का काम करती है जबकि सुई सिलने का काम करती है। एक बेशकीमती तलवार सिर्फ काटने का काम कर सकती है। जबकि एक छोटी सी सुई चीजों को जोड़ती है। तोड़ना आसान है और जोड़ना कठिन। इसी तरह विनम्रता से व्यक्ति उन सभी को जीत लेता है, जिन्हें वह अहंकारवश नहीं जीत सकता। विनम्रता और प्रेम के आगे सब पराजित हो जाते हैं। अब तुम्हीं बताओ, ऐसे में क्या ज्यादा कीमती है? तलवार एवं अहंकार या सुई और विनम्रता।

राजा कुछ देर तक उनकी बात समझने की कोशिश करने लगा। थोड़ी देर सोचने के बाद वह बाबा का संकेत समझ गया और उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोला - 'बाबा! आज आपने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी है। आज से मैं जोड़ने का काम करूँगा।' इसके बाद उसने वह तलवार फेंक दी और विनम्रता को अपने जीवन में अपना लिया। कुछ ही समय में वह राजा, जो अपने क्रूर स्वभाव के कारण जाना जाता था, वह अपने विनम्र स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हो गया।

इस तरह विनम्रता व्यक्ति के अंदर सत्पात्रता विकसित करती है। विनम्र व्यक्ति ही दूसरों के समझ झुक सकता है और दूसरों की भावनाओं का सम्मान कर सकता है। विनम्र व्यक्ति संवेदनशील होता है, जिसे दूसरों की कष्ट पीड़ा महसूस होती है और जिसे दूर करने के लिए वह सेवा सहायता के कार्य में निरत होता है। अहंकारी व्यक्ति न किसी की सेवा सहायता कर सकता और न ही दूसरों की पीड़ा को महसूस कर सकता। इसलिए पात्रता अर्जित करने के लिए सबसे पहले अपने अहंकार को त्यागना पड़ता है और विनम्र बनना होता है। विनम्र बनकर व्यक्ति सहनशील बनता है और जीवन की ऊबड़-खाबड़ परिस्थितियों से सामंजस्य बिठा पाता है। इस तरह विनम्र होकर ही व्यक्ति सही अर्थों में बड़ा बनता है और अपने जीवन को ऊँचा उठा पाता है। हमें भी जीवन में विनम्रता को ही स्थान देना चाहिए, अंहकार को नहीं।

- संकलनकर्त्ताः हर्षित जैन

मेरा मन

कभी इधर तो कभी उधर है,
उड़ती पतंग सा इठलाये ये,
देखे जब भी कुछ मनभावन सा,
उस पर भंवरे सा मंडराये ये
देखे जब भी दूजे को खुश
माचिस सी रगड़ पकड़ जाये ये,
ना हो जब ख्वाहिश पूरी तो,
पत्ता-ए-पतझड़ सा मुरझाए है,
जो कुछ भी लगे पहुँच से दूर,
बालक सम पीछे लग जाए ये
खूब भले से जाने है ये,
कोई और है अब चाहत उसकी ,
फिर भी सिक्के के दो पहलू सी,
कशमकश से उलझाये ये,
अच्छे बुरे को जाने तब भी,
छोड़ जूगनू पीछे दौड़ाये ये,
हो जाए चाहत पूरी छोटी भी तो,
मयूर नृत्य कर जाए ये,
जब बन जाए नासमझ तो,
ताश के पत्तों सा बिखरे जाए ये,
जिंदगी को जरूरत बनाना है मुझको,
नयी ख्वाहिश संग सवेरा कराए ये,
ख्वाहिश बादशाहो की भी रही है अधूरी,
कोई कैसे इसको समझाए ये,
जरूरत मुताबिक सुनो इसकी क्योंकि,
पीछे से वार कर ही जाए ये,
मेरे मन को मैं ही ना समझी,
यूँ ही नहीं भीरू कहलाए ये ....

- रक्षन्दा गोस्वामी
(एम.एस.सी.- भौतिकशास्त्र)

मजबूरी

वक्त के साथ समझौता करते लोग
अक्सर डूबते जाते हैं रिश्तों के समन्दर में
या फिर समष्टि में विद्यमान
रोबीले स्वरों के बीहड़ में
कहीं न कहीं छुपी होती है
उनमें दमन को शिरोधार्य करने की
आदतें अक्सर देख ली जाती है
अति पर सहनशक्ति
कभी जिंदगी के सफ़र में
तो कभी सफ़र करती हुई जिंदगियों में
सबको झेलना होता है अत्याचार भी
क्योंकि हमे बस वक्त काटना है
और शायद इन्हीं वक्त के साथ समझौतों में
खो देते हैं अपना चातुर्थ
सहनशीलता
और कुशल नेतृत्व भी
फिर जंग लगने लगता है
अपनी आदर्शवादी विचारधाराओं पर
धरी रह जाती है
नैतिकता और सहिष्णुता की
वो ऊँची ऊँची बातें
चकनाचूर हो जाते हैं
अन्याय और सामंतवाद के खिलाफ
उठने वाली आवाजों के अधबुने स्वप्न
और दिवास्वप्न की भांति छोडकर
निकल लेते है हम भी
क्या ये वाकई असहनीय है?
या फिर सह रहे हैं
क्योंकि उन्हें मजबूर होना है।
हर हाल में इसकी वजह तलाशता हुआ
कौन पहुँचेगा
मजबूरी की ओर?
नेमीचंद मावरी 'काव्य'
शोधार्थी, रसायन शास्त्र

भगवद्‌गीता और वायुयान टिकट

हर दिन हम किसी न किसी ऐसी चीज पर विश्वास करते हैं जिस पर हमें विश्वास होता है कि बाद में वह प्रकट होगी। जब हम वायुयान का टिकट खरीदते हैं तब टिकट के आधार पर हमें विश्वास होता है कि हमें गंतव्य पर ले जाया जायेगा। हम टिकट के लिए धन क्यों देते है? हम किसी को भी व्यर्थ में धन नहीं दे देते हैं क्योंकि वायुयान-सेवा मान्यता प्राप्त है, इसलिए हमें विश्वास होता है। हम साधारण जीवन में भी बिना विश्वास किए एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। हमें विश्वास होना चाहिए, परन्तु यह विश्वास किसी ऐसी वस्तु पर होना चाहिए, जो प्रामाणिक है। ऐसा नहीं कि हमें अन्ध विश्वास है, लेकिन हम उसी को स्वीकार करते हैं जो

मान्यता प्राप्त है।

भगवद्‌गीता प्रामाणिक शास्त्र है और भगवद्‌गीता को गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। यह वैदिक ज्ञान का सार है और वैदिक साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। भारत में हर श्रेणी के लोग इसे शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं और जहाँ तक भारत के बाहर का प्रश्न है, अनेक विद्वानों ने, धर्मवेत्ताओं ने और दार्शनिकों ने भगवद्‌गीता को महान प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। अतः भगवद्‌गीता की प्रामाणिकता के बारे में कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रोफेसर अल्बर्ट आइन्स्टीन जैसे महान् वैज्ञानिक भी नियमित रूप से भगवद्‌गीता का अध्ययन करते थे। यदि हमें किसी औषधि विशेष का सेवन करना हो तो उस पर लिखे निर्देशों का पालन करना होता है। हम मनमाने ढंग से या मित्र की सलाह से औषधि नहीं ले सकते। इसका सेवन लिखे हुए निर्देशों के अनुसार या चिकित्सक के निर्देशानुसार करना होता है। इसी प्रकार भगवद्‌गीता को इसके वक्ता पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए निर्देशानुसार ही ग्रहण या स्वीकार करना चाहिए।

- बलदेव गोविन्द दास

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की अवधारणा हमारे लिए कोई नई नहीं है। आदिकाल से ही हमारे पूर्वजों ने इस अवधारणा के बल पर ही संपूर्ण विश्व में अपनी एक अलग पहचान विश्व गुरू के रूप में बनाई है। आधुनिक भारत के परिपेक्ष्य में अगर इसकी बात की जाए तो इसके प्रणेता स्वामी विवेकानन्द एवं महर्षि अरविन्द घोष जैसे महान्पुरुष ही हैं जिन्होंने आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को विश्वपटल पर परिभाषित किया है और अपने ज्ञानरूपी संदेशों एवं विचारों से हमारा मार्गदर्शन किया है।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सम्बन्ध किसी धर्म या संप्रदाय विशेष से नहीं है इसका सम्बध हमारी सांझी एवं मिली जुली सांस्कृतिक विरासत से है जिसका मूलमंत्र है वसुधैव कुटुम्बकम अर्थात् संपूर्ण विश्व मेरा परिवार हैं। हमारी भारतीय संस्कृति के मानवता रूपी मूल्यों का आधार भी यही आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है जो हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत की जड़ों से बाँधे रखता है जिसे हम कहते हैं अनेकता में एकता, हिन्द की विशेषता इसका ज्वलन्त उदाहरण योग है। योग आध्यात्मिक तपस्या का ही परिणाम है। जिसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय विशेष से नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति के अनमोल धरोहर हैं। जिसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय विशेष से नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति के कल्याण से हैं।

वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के गुणों एवं अवगुणों के प्रवेश के कारण हमारी सांस्कृतिक विरासत के कुछ मूल्यों में गिरावट सी आई है। क्योंकि हमने उनकी संस्कृति को तो अपनाने का पूरा प्रयास कि परन्तु उसकी पीछे की उनकी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की विरासत को पहचान ने में विफल रहे यही कारण है कि विशेष रूप से हमारी युवा पीढ़ी जो कि अपनी आंखें मूंदे हुए है, अपने लक्ष्य से भटक सी गई हैं और परिणामस्वरूप अपनी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत से दूर होती जा रही है। एक ओर जहाँ हम आधुनिक विकसित समृद्धशाली भारत के राष्ट्र निर्माण की परिकल्पना की बातकरते है वही दूसरी ओर हम हमारी मूल जड़ों से ही अपने आप को काटते जा रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने संदेशों में यही कहा है कि भारत का भविष्य उसकी आने वाली युवा पीढ़ी के कंधों पर है जब तक यही युवा पीढी अपने इस कर्त्तव्य के प्रति पूर्णतया जागरूक नहीं ही जाती हम राष्ट्र निर्माण की बात तो दूर अपनी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की विरासत तक नहीं बचा पाएगें।

इस समस्या से निजात पाने के लिए आज के आधुनिक दौर में इसका एक ही उपाय है कि हम शिक्षा के उद्देश्य को एक बार फिर से परिभाषित करे। शिक्षा का एक मात्रा उद्देश्य होना चाहिए चरित्र निर्माण। और यही चरित्र निर्माण आपके राष्ट्र निर्माण और सांस्कृतिक ढाँचे की रक्षा में काम आयेगा। और इसे आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि इसकी शिक्षा चरणबद्ध तरीके से विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रमुखता से दी जाए कि हम क्या थे? क्या है? और क्या बन सकते है? क्योंकि जब तक युवा पीढ़ी शिक्षा के मूल्यों में अपने सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के मूल्यों को नहीं जोड़ लेती उसकी शिक्षा पूर्णतया निरर्थक एवं अप्रासंगिक है। और यही हमारा आज का सच हैं। स्वामी विवेकानन्द ने युवा पीढ़ी को जगाते हुए कहा है कि आप कितने ही प्रयास कर ली जब तक आप सच को नहीं जान लेते, लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है।

यदि हम हमारी शिक्षा प्रणाली में तकनीक के साथ साथ हमारी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को भी मिला ले तो हम एक सशक्त एवं सुदृढ़ युवा पीढ़ी की एक नई फौज खड़ी कर सकते हैं जो संपूर्ण विश्व को मार्गदर्शन प्रदान करे एक नया नेतृत्व प्रदान करें और हम एक बार फिर से विश्वगुरू के रूप में अपनी पुरानी पहचान स्थापित कर सके।

जय हिन्द, जय भारत !

शार्दूल कोठारी
9530470605

हाइकु : सत्राक्षरी काव्य विधा

आज के युग में जहाँ हम भागदौड़ कर अपना जीविकोपार्जन करने का वक्त बड़ी मुश्किल से निकाल पाते हैं। वहाँ वृहत्त साहित्य जैसे कविताएँ, कहानियाँ, व्यंग्य, दोहे अथवा लेख जो कि अपनी बात को आमजन तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम होते हैं।

वह इस दौर में हाशिये पर चला जा रहा है। इसे विडंबना कहिए समाज की या फिर मजबूरी लेकिन साहित्यकारों की रचनायें अब उतनी कारगर साबित नहीं हो रही हैं जितनी आजादी के कुछ दशकों बाद तक हुई।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए काव्य की नई विद्या ''हाइकु'' का विकास हुआ।

हाइकु जापान के बौद्ध गुरुओं के द्वारा कम समय में कम शब्दों में अधिक प्रेरणास्पद सहज अक्षरों से निर्मित लघु कविता थी, जो कालान्तर में साहित्य जगत में बहुत सराही गई। इसमें तीन पंक्तियों में क्रमशः 5,7,5 अक्षर सारगर्भित भाषा में लिख जाते हैं।

साहित्य जगत में कई रचनाकारों ने हाइकु लिखने का प्रयास किया उसी कड़ी में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं

1. आज का काम कल पर थोपना कामचोरी है।
2. न्याय के लिए भर्त्सना सहनी पड़े लड़ते रहो।
3. अधूरा ज्ञान प्रतिस्पर्द्धा हनन भूखे भटको।
4. चिंगारी नहीं अनल अनूठी है यौवन मन।
5. पूछे मुझसे, नादान बना मन क्या मुनासिब।

नेमी चन्द मवारी।

जयपुर रंगमंच की कुछ यादें

विश्व रंगमंच दिवस पर ये मानना औचित्यपूर्ण होगा कि मनोरंजन के चाहे कितने भी विकल्प / साधन आ जाऐं फिर भी रंगमंच का प्रभाव अलग व सुखदायक ही होता है। बदलते समय में इसकी स्थिति में काफी उतार-चढ़ाव होता रहता है, फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जो आज भी रंगमंच को अपना पहला प्यार, पूजा, श्रद्धा मानते है। यू भी रंममंच समर्पण की कला है, जिससे सन्तुष्टि के अतिरिक्त कोई अपेक्षा करना माँ के दूध की कीमत पूछना है।

जयपुर रंगमंच में में 1960 से 1980 का ऐसा दौर आया जिसने राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों की खेप दी जिन्होंने फिल्मों व टी.वी. धारावाहिकों में अपनी पहचान बनाने के बाद भी रंगमंच को अपने में जिन्दा रखा है उसके पीछे दीवाने हैं। उचित भी है क्योंकि रंगमंच ही है जिसने आत्मविश्वास दिया, उनकी कला को तराशा, मंच दिया, सन्तुष्टि दी, नाम दिया, ओर एक प्रभावशाली व्यक्तित्व दिया।

यदि महिला रंगकर्मी की स्थिति देखी जाऐ तो यही ऐसा दौर था, जिसमें विपरीत सामाजिक दृष्टिकोण के बावजूद महिलाओं ने पूरे मनोयोग से रंगमंच को अपनाया ऐसी प्रस्तुतियों दी कि उनकी पुनरावर्ती आज तक नहीं हो पाई वर्ष 1980 से 2001 तक जयपुर रंगमंच में लगभग 60 महिला रंगकर्मीयों का प्रवेश हुआ जिन्होंने कई - कई नाटकों में कार्य किया।

रंगमंच ने उनको अन्य विकल्पों में जाने का आधार दिया पर रंगमंच के प्रति समर्पण व श्रृद्धा का अभाव ही रहा वही 1960 से 1980 के दौर में आई महिला रंगकर्मीयों ने अमिट प्रस्तुतियाँ कर स्वयं को सम्मानित किया जिनमें से कुछ अभिनेत्रियों की यात्रा व भावों की लहर यू हैं।.....

शेष अगले अंक में

सुश्री किरण राठौड़

अनंत आनंद का स्त्रोत है आध्यात्मिकता

लोगों ने अभी तक अध्यात्म व आध्यात्मिकता का सही अर्थ नहीं समझा है इसी कारण इसे अपनाने में कतराते हैं। लोग यह समझते हैं कि आध्यात्मिकता का अर्थ है - अभावग्रस्त जीवन बिताना व स्वयं को कष्ट देना, और इसमें भी मुख्य रूप से यह मानते हैं कि आध्यात्मिकता जीवन-विरोधी व जीवन से पलायन है। आध्यात्मिक लोगों को जीवन का आंनद लेना वर्जित है और हर तरह से उन्हें जीवन में कष्ट ही सहना पड़ता है। इसीलिए आध्यात्मिकता की यह परिभषा गढ़ने वाले लोग आध्यात्मिक जीवन से दूर जाना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें इसमें ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता, जिससे उनका हित साधन हो सके, जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। आध्यात्मिकता का व्यक्ति के बाहरी जीवन से कुछ भी लेना देना नहीं है कि वह कैसे रहता है? क्या पहनता है? क्या खाता है? अध्यात्म का विषय ही मनुष्य के आंतरिक जीवन से जुड़ा हुआ है। वे सभी गतिविधियाँ, जो मनुष्य को परिष्कृत, निर्मल बनाती हैं, आनंद से भरपूर करती हैं, पूर्णता का एहसास देती हैं, स्वयं से परिचय कराती हैं - वे सब अध्यात्म के अंतर्गत आती हैं। इन सभी गतिविधियों को जीने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक कहलाता है।

एक बार किसी सद्गुरू से किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया- 'एक आध्यात्मिक व एक संसारी व्यक्ति में क्या अंतर है?' इस बारे में सद्गुरू का सहज उत्तर था - 'एक संसारी मनुष्य केवल सांसारिक कार्यों को कर पाने में सक्षम होता है, जबकि आंतरिक संतुष्टि के लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके विपरीत एक आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी आंतरिक संतुष्टि स्वयं अर्जित करता है और मात्र सांसारिक कार्यों के लिए संसार पर निर्भर रह सकता है।'

आध्यात्मिकता का संबंध मनुष्य के आंतरिक जीवन से है और इसकी शुरूआत होती है- उसकी अंतर्यात्रा से। मनुष्य पूरी दुनिया में भ्रमण करता है, लेकिन अंतर्यात्रा ही नहीं करता तथा अपने अंतर में प्रवेश ही नहीं कर पाता। विरले ही होते हैं, जो इस अंतर्यात्रा में प्रवेश के अधिकारी होते हैं, इसके लिए सद्पात्र होते हैं और सामान्यजन आध्यात्मिक जीवन की पात्रता की कसौटी को जाने बिना ही इसे कठिन मार्ग मान लेते हैं।

आध्यात्मिक जीवन की बहुत सी कसौटियाँ हैं, लेकिन कुछ ऐसी प्रमुख बाते हैं, जिन्हें जानकर हम यह आकलन कर सकते हैं कि हमारे अंदर आध्यात्मिकता का कितना अंश है? जैसे यदि किए जाने वाले कार्यों का उद्देश्य स्वार्थ न होकर परमार्थ है, तो यह आध्यात्मिकता की राह है। यदि व्यक्ति अपने अहंकार, क्रोध, नाराजगी, लालच, ईर्ष्या और पूर्वाग्रहों को गला चुका है तो वह आध्यात्मिक जीवन की डगर पर बढ़ रहा है। व्यक्ति की बाहरी परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, पर वह यदि आंतरिक रूप से प्रसन्न रहता है तो इसका अर्थ है कि वह आध्यात्मिक जीवन को महसूस करने लगा है। यदि इस विशाल सृष्टि के सामने स्वयं को नगण्य और क्षुद्र मानने का एहसास व्यक्ति कर पाता है तो वह आध्यात्मिक बन रहा है। उसके पास जो कुछ भी है, उसके लिए यदि वह सृष्टि या परमसत्ता के प्रति कृतज्ञता महसूस कर पाता है तो वह आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रहा है। यदि व्यक्ति में स्वजनों के प्रति जितना प्रेम उमड़ता है, उतना ही सभी लोगों के लिए उमड़ता है, तो वह आध्यात्मिक है।

आध्यात्मिक होने का अर्थ है कि व्यक्ति अपने अनुभव के धरातल पर यह जानता है कि वह स्वयं अपने आंनद का स्त्रोत है। बाहरी वेशभूषा व रहन-सहन से आध्यात्मिकता का कोई लेना देना नहीं है, क्योंकि इसका वास्तविक संबंध व्यक्तित्व की अतल गहराई से है। आध्यात्मिकता सोए हुए संवेदनहीन व्यक्तियों के लिए नहीं है, यह निधि तो उनके लिए है, जो जीवन के हर आयाम को पूर्ण जीवंतता के साथ जीते हैं और हर पल सजग व सक्रिय रहते हैं।

आध्यात्मिक प्रक्रिया व्यक्ति की एक ऐसी अंतर्यात्रा है, जिसमें निरंतर परिवर्तन घटित होता है और इन परिवर्तनों के कारण उपजे उतार-चढ़ाव को उसे सहने के लिए भी तैयार होना चाहिए, अन्यथा इसके परिणाम उसके लिए अच्छे नहीं होते। इसी कारण जो व्यक्ति आध्यात्मिक नगर पर आगे बढ़ते हैं, उनमें अदम्य साहस, सशक्त, स्वस्थ्य शरीर व संतुलित भावनाओं का होना जरूरी है। आध्यात्मिक व्यक्ति को अपना संबंध परमात्मा से जोड़ना चाहिये। जो कि यद्यपि प्रत्यक्ष दृश्य मान नहीं है, लेकिन व्यक्ति अपनी पवित्र भावनाओं के माध्यम से उन अदृश्य परमात्मा तक पहुँच सकता है और उनके सतत सानिध्य को प्राप्त कर सकता है।

आध्यात्मिकता मूलतः व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से हम अपने व्यक्तित्व में जनम - जन्मांतरों से पड़ी हुई गाँठों को खोल पाते हैं, उनमें जमा ऊर्जा को मुक्त कर पाते हैं और अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं। आध्यात्मिकता का अर्थ है कि अपने आत्म विकास की प्रक्रिया को खूब तेज कर देना। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का अर्थ है कि व्यक्ति अपने बंधनों से मुक्त हो रहा है, पूरी तरह से स्वतंत्र हो रहा है, अब वह किसी के अधीन नहीं रह गया है, अब वह अपनी स्वेच्छा से कुछ भी कर सकने में समर्थ है और उसे यह अधिकार स्वयं प्रकृति ने दिया है। आध्यात्मिकता न तो मनोवैज्ञानिक क्रिया है और न ही सामाजिक। यह शत-प्रतिशत हमारे अस्तित्व से संबंधित है। अगर हम किसी कार्य में पूरी तन्मयता से डूब जाते हैं तो वहीं पर आध्यात्मिक प्रक्रिया की शुरूआत हो जाती है, क्योंकि किसी चीज को सतही तौर पर जानना सांसारिकता है और उसे गहराई तक जानना आध्यात्मिकता है।

ज्ञानीजन कहते हैं कि 'शून्य में विराट समाया है ओर इस विराट में भी शून्य है। जो इस शरीर में ही रहकर परमात्मा के इस विराट रूप को समझ पाता है, उसे अनुभव कर पाता है, वही आध्यात्मिक है और इसके लिए उसे इस भौतिक दृश्यमान जीवन से परे घटित होने वाले जीवन को भी अनुभव करना होगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही मनुष्यों को सही राह दिखा पाने में सक्षम है और यही हम सबके जीवन का ध्येय होना चाहिए।'

- संकलनकर्त्ताः देवयानी जोशी

समझ का फेर

आइये अर्च विग्रह सेवन को लेकर कुछ की जाए चर्चा
लोगों के मन में भ्रांति कि पत्थर को सजाने में क्यों इतना खर्चा
अर्च विग्रह वो स्वयं भगवान है, ये है शास्त्रों में उल्लेख
खुद के मन की छोड़, शास्त्रों की आँखों से देख
भगवान के लिए पत्थर की भावना
तो आपके लिये वह पत्थर हैं
गर भगवान के लिये भगवान की भावना,
तो आपके लिये तत्पर हैं
भक्तों की है भावना तो भगवान दिखाते हैं कई कमाल
तभी तो वृन्दावन से चलकर उड़ीसा पहुँच गये साक्षी गोपाल
भगवान तो सभी जगह फिर मंदिर ही क्यों जाना है?
हर पत्थर में भगवान तो मंदिर ही क्यों उनका ठिकाना है
जैसे डाक हेतु हर डिब्बा नही बल्कि प्रमाणित डिब्बे पर
होती है निष्ठा, शास्त्रोनुसार प्रमाणित भगवान मंदिर में
क्योंकि हुइ है वहाँ उनकी प्राण प्रतिष्ठा
अतः शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर करनी चाहिए भगवान की पूजा
हरिनाम जप भी है भगवान की सेवा करने एक तरीका दूजा
लेकिन मंदिर में भगवान को भोग चढ़ाते तो वे क्यों नहीं खाते
अरे, भगवान भोग तो खाते हैं लेकिन हम समझ नहीं पाते
भगवान भोग ग्रहण करके छोड़ देते हैं पूरा का पूरा
सच तो यह है कि हमें अर्थ विग्रह सेवन का है ज्ञान अधूरा
निवेदन यही, हरिनाम जप व अर्च
विग्रह सेवन को लेकर मिटायें सभी भ्रांति
आइये मिलकर सम्पूर्ण जगत में फैलायें
हरे कृष्ण आंदोलन की क्रांति।

- कृष्ण पाद दास

जीवन का लक्ष्यः सुख और आनन्द की प्राप्ति

आनन्द ही प्रकृति में सत्वगुण बन प्राणियों को सुख रूप में उपलब्ध होता है। सुख और आनन्द का अन्तर समझ लीजिये। जो किसी इन्द्रिय (कान, नाक, नेत्र, जीभ और त्वचा) के माध्यम से उपलब्ध होता है वह सुख है जो इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के बिना प्राप्त होता है वह है आनन्द। ध्यान में, समाधि में, निद्रा में भी आनन्द उपलब्ध होता है।

आनन्द आपके भीतर है वह बाहर नहीं पाया जाता है। सुख के रूप में आप उसे जगाते हैं। किसी को मिठाई अच्छी लगती है किसी को नहीं। यदि मिठाई में सुख हो तो सबको उससे सुख मिले। अपने अनुकूल का नाम सुख और प्रतिकूल का नाम दुःख है। अनुकूलता व प्रतिकूलता आपकी रूचि के अनुसार होगी। विषयों का माध्यम बना कर सुख जगाया जाता है। इसका अर्थ है सुख आपके भीतर ही है सदा, असीम है। किन्तु प्रसुप्त पड़ा है। उसे यदा कदा आप किसी माध्यम (व्यक्ति, वस्तु, क्रिया) से थोड़ा जगा पाते हैं। यह विषयों के माध्यम से मिलने वाला सुख विषयों के पराधीन है। इसलिये अन्त में दुःख का कारण बन जाता है। अनुकूल विषय मिले और इन्द्रियों में शक्ति हो तो उससे सुख मिले।

सुख का स्वरूप समझ लेना ठीक होगा। सुख नौ प्रकार का होता है। सात्विक राजस और तामस तीन प्रकार के भेद है इनके भी तीन-तीन भेद है।

1. सात्विक सुख -

1. धर्म का सुख, 2. शान्ति का सुख, 3. साधना का सुख। किसी का भला करके किसी को कुछ देकर सुख होता है। भजन पूजन ठीक ठीक चलता रहे तो भी सुख होता है। यह सात्विक सुख है।

2. राजस सुख :-

1. भोग का सुख, 2. अभिमान का सुख कि हमारे पास इतना धन, ऐसा भवन, वाहन या पद है आदि आदि।

3. अभ्यास का सुख 1 प्रतिदिन जो कार्य (व्यायाम, स्नान, भोजन आदि करते हो, वह ठीक-ठीक चलता है।

3. तामस सुख :-

1. निद्रा का सुख, 2 प्रमाद (ताश, शतरंज सुख दूसरों को कष्ट देकर अपमानित करके होने वाला) सुख।

इनमें से तामस में से एक आवश्यक निद्रा रखने योग्य हो शेष दो सर्वथा व्याज्य है। राजस सुख अभिमान का सुख व्याज्य है। आवश्यक भोग तथा अभ्यास रहना चाहिये। सात्विक सुख में कोई व्याज्य नहीं है।

सात्विक सुख चित्त और बुद्धि की निर्मलता से प्राप्त होता है। और पहले यह विष के समान कड़वा लगता है। किन्तु परिणाम में अमृत के समान होता है। सुख मात्र के लिये नियम यही है।

आपको आज जो वस्तु या क्रिया बहुत सुखद लगती है। वह आपके अभ्यास सुखप्रद बनी है। अन्यथा कोई नशा, मिर्च या खटाई किसी को आरम्भ सुख नहीं देते। अतः जब अभ्यास से ही रूचि बनती हो और रूचि के अनुकुल होने से सुख मिलता है तो रूचिका परिष्कार करना चाहिये। सात्विक सुख लेने का अभ्यास करना चाहिये। रूचि के अनुकुल होने पर पदार्थ स्वादिष्ट होते है। आवश्यकता भी उसे स्वाष्टि बना देती है। लोग कहते हैं स्वाद पदार्थ में नहीं सुख में होता है। लेकिन भूख हमारी विवशता ही तो है पदार्थ की महत्ता नहीं यदि वह रूचि के अनुकूल प्रिय लगता है। पदार्थ को तो भूख, रूचि और आवश्यकता सुखद बनाती है। संसार के सभी सुख इसी प्रकार के हैं।

एक और महत्वपूर्ण तथ्य कि आपकी रूचि नहीं है भूख नहीं है। किन्तु पदार्थ प्रिय बन जाता है। आपका नन्हा बालक हंसता किलकिलाता आता है और आपको एक पत्ता या रद्दी कागज देता है? आप पुलकित हो उठते हो। उस पत्ते या कागज की आवश्यकता है आपको? उसके प्रति रूचित है। आपमें दोनों नहीं और आप प्रसन्न है। यह है प्रेम। प्रेम इन्द्रिय जन्य भोगों से निरपेक्ष आनन्द देता है और इसका आपको अनुभव है।

इस प्रेम को जीवन में जगाया जाये। जीवन ही आनन्दमय हो जाये किन्तु प्रेम बाहरी प्राणि पदार्थों में लगकर तो विकृत हो जाता है। काम, क्रोध लोभ आदि बनकर उत्पीडक हो जाता है। प्रेम, परमात्मा में होकर ही शुद्ध और पूरा होता है।

इस प्रेम को पाने का क्रम है।

1. श्रद्धा - शास्त्र में संत में सद्ग्रन्थ में।

2. रूचि - श्रद्धा होने पर पठन, श्रवण सेवा होने से रूचि होती है।

3. रूचि ही परिपक्व होकर प्रीति प्रेम, आनन्द या भक्ति बनती है।

आनन्द (प्रेम) प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है। प्रेम अपने से होता है। सम्बन्ध पूर्वक होता है। प्रेम करना है। लक्ष्य आनन्द तो परमात्मा को अपना बना लीजिये। परमात्मा के किसी रूप नाम को अपना बनाइये। परमात्मा केवल बनाने से, मानने से अपना हो जाता है क्योंकि वह अपना तो वह पहले से ही है। परमात्मा का स्मरण करना ही उस प्रेम प्राप्ति (आनन्द) का साधन है। भगवान का नाम लेना भी प्रेम है। जिससे प्रेम होता है, उसका स्मरण अपने आप होता है। लेकिन प्रेम नहीं हो तो प्रयत्नपूर्वक स्मरण करते रहो। अभ्यास से रूचि और रूचि से आनन्द प्रकट होगा। तो प्रेम स्वतः हो जायेगा। स्मरण करते करते फिर स्मरण स्वतः होगा जैसे बच्चों का स्मरण करने के लिए विशेष समय परिस्थिति नहीं होती ऐसे ही परमात्मा का स्मरण स्वतः होगा। आनन्दमय अवस्था बनी रहेगी। परमात्मा से प्रेम करोगे तो सबसे प्रेम हो जायेगा। यह अनुभव में आ जायेगा कि सभी भगवान से है भगवान के है भगवान है तब राग टिकेगा ही नहीं। राग का स्थान प्रेम ले लेगा और द्वेष वैराग्य में बदल जायेगा। तब प्रत्येक परिस्थिति, व्यक्ति, पदार्थ, क्रिया में प्रेम (अपनेपन) का अनुभव होगा।

संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं है। जो प्रेम न करता हो। सबका किसी न किसी से प्रेम है। दूसरे किसी से नहीं होगा तो अपने शरीर से होगा, किन्तु यह भ्रम है कि दूसरे से प्रेम किया जा रहा है। हम और आप इस भ्रम में हैं कि प्रेम हम तन, धन, स्त्री, पुत्र-पुत्री या पद-प्रतिष्ठा से करते हैं हम इन माध्यमों से परमात्मा से ही प्रेम करते हैं। (प्रकृति भगवान का प्रकट रूप है।) इस कारण राग-द्वेष की भाँति में भटक रहे है। यह प्रेम अन्यन और स्थिर नहीं होता है। बिखरा-बिखरा रहता है। अनेकों से होता है। (पद-प्रतिष्ठा कुछ तन, कुछ धन से कुछ सम्बन्धियों से) स्थायी नहीं होता है। जहाँ स्वार्थ या सम्मान पर आघात लगा या शंका हुई उसे द्वेष में परिवर्तित होने में समय नहीं लगता।

प्रेम का पिता है विश्वास और माता है निरपेक्षता। संसार में सब ओर से निरपेक्ष होकर (यह सब संसार परमात्मा का ही है मानना) जो परमात्मा पर विश्वास करता है उसे परमात्मा का प्रेम प्राप्त होता है जो कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य है और सभी इसी ओर दौड़ रहे हैं। किन्तु अविधिपूर्वक प्रेम का भी प्रेम ही है। (परमात्मा का स्मरण) परमात्मा स्मरण (नाम, रूप, गुण, चीज) करने पर प्रेम (आनन्द) प्रकट होता है। जो किसी और पर आश्रित नहीं है। परमात्मा से प्रेम करोगे तो परमात्मा से प्रेम मिलना प्रारम्भ हो जायेगा।

अपने लिये आप परमात्मा का नाम चुन लीजिये, यह नाम ही परमात्मा हो सचमुच सर्वशक्तिमान परमात्मा बन जायेगा। इस नाम का जाप कीजिये, स्मरण कीजिये। आपको परमात्मा का अनुभव होगा, आनन्द (प्रेम) की अनुभूति होगी जो कि हमारे जीवन का लक्ष्य है।

- मंजू गुप्ता

पृष्ठ 2 का शेष .....

मदन मोहन मालवीय

संगठित हिन्दू महासभा यह भी चाहती थी कि बहुसंख्यक हिन्दूओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों में पूर्ण सद्भाव स्थापित हो तभी देश का सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उन्नयन सम्भव हो सकेगा।

पण्डित मदन मोहन मालवीय ने पाँच वर्ष तक हिन्द महासभा का नेतृत्व किया और देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए यथासम्भव प्रयास किया। स्वराज्य की मांग की प्राथमिकता पर सदा ध्यान रखा। उन्होंने समाज सुधार के काम में सनातन धर्म पर दृढ़ निष्ठा रखने वाले हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को सदा ध्यान में रखा और शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर ही समाज सुधार का कार्य सम्पन्न किया।

हिन्दू महासभा के गया अधिवेशन में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने हिन्दू जाति की दुर्दशा का प्रमुख कारण उसका धर्म से विमुख होना बताया। इस विचार की अधिक स्पष्ट करते हुए मालवीय जी ने कहा, ''हमारा धर्म अन्य धर्मों का मान करना सिखाता है, हमें सहनशील बनाता है और अन्य धर्मों पर आक्रमण करने की शिक्षा नहीं देता। साथ ही धर्म यह भी आदेश देता है कि यदि तुम्हारे धम्र पर कोई आक्रमण करे तो अपनी रक्षा के लिए प्राण तक निछावर करने में कभी संकोच न करो। इस धर्म को शुद्ध हृदय से और अक्षरशः पालन करने से ही हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित हो सकती है। उन्होंने हिन्दुओं को आव्हान करते हुए कहा कि वे पहले भारतवासी हैं और फिर हिन्दू।''

19 अगस्त सन् 1923 में काशी में पण्डित मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिन्दू महासभा का साधारण अधिवेशन हुआ। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में हिन्दू जाति की प्राचीनता, विशिष्टता और गौरव को सविस्तार रेखांकित किया। मालवीय जी ने आग्रह किया कि जिस प्रेम से वे कांग्रेस में जाते हैं, उसी प्रेम से हिन्दू महासभा में एकत्र होकर विचार करें कि हिन्दू जाति का गौरव, हिन्दू जाति की प्रतिष्ठा किस प्रकार पुनः स्थापित कर सकेंगे।

मालवीय जी ने शारीरिक दुर्बलता को हिन्दू जाति की विपतियों का आधारभूत कारण निरूपित्त किया। उपचारार्थ उन्होंने ब्रह्मचर्य और व्यायाम की ओर समुचित ध्यान दने का आग्रह किया। बाल-विवाह जैसी कुप्रथा को तत्काल समाप्त करने का उपदेश दिया। शिक्षा के व्यापक प्रचार तथा स्त्रियों के सर्वांगीण विकास की ओर भी प्रतिनिधियों का ध्यान आकृष्ट किया। उनहोंने विद्वत्मण्डली से प्रार्थना की कि वे अन्त्योद्धार और शुद्धि के सम्बन्ध में उचित व्यवस्था दें। स्वराज्य प्राप्ति को उन्होंने परमावश्यक कहा।

हिन्दू महासभा का विशेष अधिवेशन बेलगाँव में 27 और 28 दिसम्बर 1929 ई. को कांग्रेस पण्डाल में पण्डित मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ।

हिन्दू - मुस्लिम एकता के समर्थक (साम्प्रदायिकता के उन्मूलक)

अधिकांश लोगों का विश्वास है कि पण्डित मदन मोहन मालवीय मुसलमानों से द्वेष रखते थे। परन्तु ऐसी बात नहीं थी। वे कदापि साम्प्रदायिक नहीं थे। उनहोंने हिन्दू - मुस्लिम एकता को मजबूत बनाने के लिए सर्वदा अथक प्रयास किया।

असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद सन् 1921 में दिल्ली में मौलाना मुहम्मद अली के घर में महात्मा गाँधी ने 21 दिन का उपवास किया था। उस समय पण्डित मदन मोहन मालवीय ने वहीं उन्हें श्रीमद्भागवत का साप्ताहिक पारायण सुनाया था। सारा देश इस समाचार पर चकित था। यह एक नवीन बात थी कि एक मुसलमान के घर पर सात दिनों तक श्रीमद्भागवत का पाठ हो और वह भी पण्डित मदन मोहन मालवीय द्वारा यह हुआ। इससे बढ़कर हिन्दू-मुस्लिम एकता का दूसरा उदाहरण कोई हो ही नहीं सकता।

पण्डित मदन मोहन मालवीय के प्रयास से हिन्दू महासभा ने अपने बनारस अधिवेशन में शुद्धि का प्रस्ताव पारित किया। कुछ माह पूर्व ही 31 दिसम्बर सन् 1922 को शाहपुरा (मेवाड़) के राजाधिराज पर नाहरसिंह के नेतृत्व में आगरा में अखिल भारतीय क्षत्रीय महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें साढ़े चार लाख मुस्लिम राजपूतों को शुद्धि द्वारा हिन्दू बिरादरी में सम्मिलित करने का निश्चय किया गया। 13 फरवरी सन् 1923 को ''अखिल भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा'' गठित की गयी। स्वामी श्रद्धानन्द उसकी प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष चुने गये। उनकी देखरेख में हजारों अतिथियों की उपस्थिति में मलकाना (मुस्लिम राजपूत) काफी बड़ी सख्या में हिन्दू भाईयों द्वारा बहुत उत्साह और धूमधाम से हिन्दू बिरादरी के अंग बना लिये गये। मुसलमानों ने इसका घोर विरोध किया। कुछ हद तक हिन्दू परम्परावादियों का दुराग्रह भी इसके लिए उत्तरदायी था।

पण्डित मदन मोहन मालवीय ने 11 अप्रैल सन् 1931 में कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों की सभा में भाषण देते हुए कहा, ''मैं मनुष्यता का पूजक हूँ। मनुष्यत्व के आगे मैं जात-पाँत नहीं मानता। कानपुर में जो दंगा हुआ उसके लिए दोनों जातियों का दोष्ज समान है। मेरा आपसे कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा करें कि अब भविश्य में अपने भाईयों से दंगा नहीं करेंगे। मन्दिर अथवा मस्जिद नष्ट करने से धर्म की श्रेष्ठता नहीं बढ़ती, ऐसे दुष्कर्मों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। आप लोगों ने आपस में लड़कर जो अत्याचार किए हैं, उसका जवाब आपको ईश्वर के सामने देना होगा।''

मालवीय जी के सर्वधर्म समभाव का एक और प्रमाण निम्नांकित है। सन् 1932-33 ई. में काशी में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगा हुआ। अनेक निरपराधियों की जाने गयी। हिन्दूओं को सहायता पहुँचाने के लिए कांग्रेसियों की सहायता समिति गठित की गयी। पण्डित मदन मोहन मालवीय श्री शिवप्रसाद गुप्त आदि उसके सदस्य मनोनीत किये गये थे। हिन्दू मुहल्लों के दंगा पीड़ितों को सहायता पहुँचायी जा रही थी। किसी ने पण्डित मदन मोहन मालवीय से कहा मुस्लिम मुहल्लों में मुसलमान भी भूखे मर रहे थे। पण्डित मदन मोहन मालवीय ने श्री शिवप्रसाद गुप्त से कहा मुसलमानों को भी वैसी ही सहायता मिलनी चाहिये जैसे हिन्दूओं को दी जा रही थी। आदेशानुसार श्री गुप्त ने दंगा पीड़ित मुस्लिम भाईयों को आर्थिक सहायता प्रदान की। स्वयं पण्डित मदन मोहन मालवीय ने एक छोटी लॉरी पर खाने का सामान रखवाकर मुसलमानी मुहल्लों में भिजवाना। भ्रातृत्व भाव के इस प्रसंग से महात्मा गाँधी गद्गद् हो गए।

28 जून सन् 1933 को लाहौर की एक आमसभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, हिन्दू बलवान होकर मुसलमानों को तकलीफ दे, ऐसी मेरी स्वप्न में भी कल्पना नहीं है। मेरी सदा ऐसी इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान हों और जगत् के अन्य समाजों के साथ्ज्ञ खड़े होने लायक बनें। हिन्दु और मुसलमान एक हों ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है।

..... शेष अगले अंक में

- डॉ. ज्योति जोशी

प्रकाशक एवं **सम्पादक डॉ. ज्योति जोशी**, मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर, मालवीय नगर, जयपुर-302 017 • फोन : 9413971604, ई-मेल : malaviyaprakash.lokmat@gmail.com
सदस्य, सम्पादक मंडल : अशोक अग्रवाल एवं अंशु सक्सैना
लेजर टाईप सैटिंग एवं मुद्रण स्थल : द् प्रिण्ट पैलेस, कैलगिरी रोड, मालवीय नगर, जयपुर-302 017 • फोन : 0141-4002016 • www.theprintpalace.com